प्रधान–सम्पादक
यशदेव शल्य
मुकुंद लाठ

सम्पादक
अम्बिकादत्त शर्मा
प्रदीप कुमार खरे

उन्मीलन

मानसिक हिन्द स्वराज का वैतालिक
दार्शनिक षाण्मासिक

वर्ष 32, अंक 2
जुलाई-दिसम्बर, 2018

अनुक्रमणिका

1. रामावतार शर्मा और उनका परमार्थदर्शनम् 5
राधावल्लभ त्रिपाठी

2. परपिचुअल पीस : काण्ट का राजनीति–दर्शन 27
संजय कुमार शुक्ला

3. रामायण का सत्य और महाभारत का धर्म 46
अम्बिकादत्त शर्मा

4. प्रसन्नता, संतुष्टि और स्वतंत्रता 61
अशोक वोहरा

5. मध्यमावतारः 71
मूल लेखक – आचार्य ज्ञानश्रीमित्र
हिन्दी रूपान्तरकार – डॉ. वृजकिशोर त्रिपाठी

6. पुस्तक–समीक्षा : शंकराचार्य एवं सार्त्र के दर्शन में मानव–नियति 112
दिग्विजय मिश्र

रामायण का सत्य और महाभारत का धर्म

अम्बिकादत्त शर्मा

कोई भी महाकाव्य किसी संस्कृति और सभ्यता का एक वाङ्मय–विग्रह होता है। इसका ऐतिहासिक महत्त्व बहुत बड़े फलक पर जीवनानुभव का अवलोकन और अवगाहन है। यह अवगाहन बाह्य–दर्शक की भूमिका में न किया जाकर अंतरंग चित्तभूमि पर किया जाता है। इसी के चलते महाकाव्यों में इतिहास को सन्दर्भित करने वाले एक कथानक के माध्यम से सांस्कृतिक जीवन के अन्तर्विरोधों, अन्तर्द्वन्दों, जटिलताओं और इतिहास की प्रयोजनमूलकता का आदर्शोन्मुख समाधान उस संस्कृति की विश्वदृष्टि के सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य में सम्भव हो पाता है। अतः महाकाव्यों में एक आदर्शोन्मुखी जीवन–दृष्टि निरपवाद रूप से रूपायित तो होती है लेकिन उनकी आदर्श–चेतना एक जैसी हो, यह आवश्यक नहीं। यहाँ तक कि एक ही सांस्कृतिक परम्परा के दो या दो से अधिक महाकाव्यों की आदर्श–चेतना में गहरे भेद के लक्षण देखे जा सकते हैं। इस भेद का कारण महाकाव्यों के प्रस्थान बिन्दु का भिन्न–भिन्न होना है। वस्तुतः इसी भिन्नता में महाकाव्यों की निजी विशिष्ठता निहित होती है। यह प्रस्थान–भेद तत्तद् महाकाव्यों के कथानक, इतिहास बोध और रचना काल से निर्धारित नहीं होती बल्कि उस आधारभूत मूल्यबोध से निर्धारित होती है जिसे नींव का पत्थर बनाकर महाकाव्यों में मूल्यव्यवस्था का एक प्रासाद, एक वाङ्मय–विग्रह तैयार किया जाता है। महाकाव्यों के नायकों के जीवन–चरित अथवा उनकी भूमिका के द्वारा जिस मूल्य या आदर्श को प्रतिष्ठापित किया जाता है, उसी से प्रस्थान–भेद को पहचानना सम्भव हो पाता है।

I

भारतीय परम्परा में रामायण और महाभारत वाल्मीकि और वेदव्यास रचित दो ऐसे महाकाव्य हैं जिनके माध्यम से दो युगों की आर्ष–संस्कृति अपनी सोलहों कलाओं के साथ वाग्–विग्रहित हुई है। वाणविद्ध क्रौंच मिथुन के शोक से निःसृत रामायण के चौबीस हजार श्लोक

मानो "सप्तभिर्युक्तं तंत्रीलयसमन्वितम्" हैं।[1] महाभारत के विषय में तो स्वयं वेदव्यास ने ही कहा है– "यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्" अर्थात् जो महाभारत में नहीं वह कहीं भी नहीं है।[2] आर्ष–संस्कृति का आदर्श है– देवो भूत्वा देवं यजेत्। हम देव की अर्चना–उपासना देव बनने के लिए करते हैं। इसलिए महाकवि रवीन्द्र नाथ टैगोर ने उचित ही कहा है कि "रामायण में देवता अपने को खर्व बनाकर मानव नहीं बने, अपितु मानव स्वयं ही गुणों से देवता बन गया।"[3] ऐसे ही श्री अरविन्द का कथन है कि "भारतवासी की कल्पना में रामायण मनुष्य–चरित्र के श्रेष्ठतम और मधुरतम आदर्श की प्रतिमूर्ति है।"[4] परन्तु हिमालय के शिखरों और साधुओं से घिरे कैलाश चूड से तुलनीय 'महाभारत' और शिव की जटाओं में जड़ित 'तपोस्तेपे तपोधना जाहणवी' से उपमेय 'रामायण' का प्रतिपाद्य और प्रस्थान बिन्दु एक ही नहीं है। इतना ही नहीं, गायत्री स्वरूपा 'रामायण'[5] और नानापुराणनिगमागम सम्मत 'रामचरितमानस' की कथावस्तु बहुत अंशों में एक होते हुए भी दोनों के प्रतिपाद्य और प्रस्थान बिन्दु अलग–अलग हैं।

वाल्मीकि रामायण 'सत्य' का प्रतिष्ठापक महाकाव्य है और महाभारत में अद्यतन 'धर्म' की प्रतिष्ठा की गई है। एक में भारतीय संस्कृति की सम्पूर्ण मूल्य–व्यवस्था और आदर्श–चेतना को सत्य में मूलित किया गया है तो दूसरे में वह पूरे तौर से धर्माधारित है। रामायण का महामंत्र और मूलभित्ति 'धर्मः सत्यपरोलोके'[6] है तो महाभारत का मूलमंत्र 'यतोधर्मस्ततो जयः'[7] है। दोनों महाकाव्यों के दो महानायक यद्यपि परमब्रह्म परमात्मा के अवतार हैं फिर भी सत्याधृति यदि दाशरथी राम का उपलक्ष्यक गुण है तो धर्माधृति योगेश्वर कृष्ण का व्यावर्तक लक्षण है। इसलिए यह कहना सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है कि रामायण की फलश्रुति सत्यनिष्ठा में है और महाभारत का पर्यवसान धर्मनिष्ठा में होता है।[8] परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि दोनों महाकाव्यों की निज निष्ठा में सत्य और धर्म परस्पर एक दूसरे के परिहारक हैं। वस्तुतः दोनों महाकाव्यों की मूलभूत समस्या सत्य और धर्म का एक दूसरे में अवधारणात्मक रूपान्तरण के द्वारा दो युगों को सन्दर्भ बनाकर एक पर दूसरे की वीरयता को स्थापित करना है। रामायण में धर्म को सत्य में (सत्याधारित धर्म) और महाभारत में सत्य को धर्म में (धर्माधारित सत्य) रूपान्तरित किया गया है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति और सभ्यता में 'सत्य' और 'धर्म' मूल्यबोध के दो परस्पर स्वायत्त प्रतिमान हैं। इसलिए